नियमसार। ध्यान की व्याख्या। अन्तिम है। चार ध्यानों में... चार ध्यान कहे न? आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान। उनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान हेय है, छोड़नेयोग्य है। धर्मध्यान पहले उपादेय है। पहला ध्यान यह... शुद्धता की अल्पता। स्व-आश्रय आया था न? स्व-आत्माश्रित निश्चयधर्मध्यान। टीका में आया था। स्व आत्मा... सूक्ष्म बात बहुत, भाई! ...कहते थे। नैरोबीवाले... थे न? ...वाले नहीं... गये, वे तो गये। ऐसा सूक्ष्म वहाँ नहीं चलता, नैरोबी में। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, स्व जो आत्मा, यह स्वाश्रित जघन्य धर्मध्यान हो, वह पहले उपादेय है। पश्चात् शुक्लध्यान होता है, वह तो उपादेय है ही। यहाँ धर्मध्यान में शुभभाव उपादेय है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? कहीं आ गया है न? स्व-आत्मा-आश्रित निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान। बात यह है कि यह चैतन्य परम अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, अतीन्द्रिय अनन्त शान्ति, अविकारी त्रिकाल स्वभाव का आश्रय लेने से धर्मध्यान होता है। लाख दूसरी बात हो तो भी। शुभाभाव हो।

मुमुक्षु : व्यवहार धर्मध्यान कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार धर्मध्यान अर्थात् पुण्य। यह निश्चयधर्मध्यान अर्थात् शुद्ध। आहाहा! शुद्ध सत् स्वरूप अस्ति है न? अस्ति है, वह तत्त्व है। तत्त्व है तो वह तत्त्व स्वभाव से खाली नहीं होता। स्वभाववान है। स्वभाव है, उसकी हद नहीं होती। अनन्त-अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियाँ अर्थात् स्वभाव, वह आत्मा। ऐसे आत्मा के आश्रय से जो जघन्य पाये, उसे यहाँ धर्मध्यान कहा जाता है। यहाँ शुभभाव की बात ही नहीं है। सूक्ष्म बात है। लड़के हैं न। सात, आठ, दस पैसा बहुत। ऐसा कहे, यह बहुत सूक्ष्म। आत्मा अकारक है। निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से काल कहा जाता है। उस काल से पर्याय में अकारक कहा जाता है। इसके बाप-दादा ने सुना नहीं होगा। आहा! प्रभु का मार्ग तो यह है, भाई! प्रभु! तू प्रभु होने के योग्य है, हों! ...इसका अर्थ प्रभु होने के योग्य अर्थात् तू प्रभु है। आहाहा! भगवान है, परमेश्वर है, अनन्त-अनन्त गुण का सागर है, गुण का सागर है। अरूपी है, क्षेत्र छोटा है, इससे स्वभाव की हद नहीं हो सकती। शरीरप्रमाण क्षेत्र छोटा, इसलिए स्वभाव की मर्यादा नहीं होती। मर्यादा तो अपरिमित जिसका स्वभाव है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेना, अवलम्बन लेना, उसे ध्येय बनाकर ध्यान में रहना। यह निचला धर्मध्यान, जघन्यदशा धर्मध्यान कही जाती है।

तीसरा प्रथम तो उपादेय है... प्रथम यह श्रेणी इस अपेक्षा से उपादेय है, आदरणीय है। **और चौथा सर्वदा उपादेय है।** पूर्णानन्द के नाथ में पूर्ण आश्रय करके स्थिर रहना, यह तो उपादेय है ही। इससे ही केवल (ज्ञान) होता है। आहाहा! इसमें बाह्य क्रिया की कोई बात नहीं आयी। ऐसी बाह्य क्रिया करे, ऐसा करे तो ऐसा हो, ऐसे निमित्त करे, भक्ति करे, पूजा करे, साधर्मियों की सहायता करे, साधर्मी को मदद करे, कर्म से गिरते को स्थिर करे - ये सब विकल्प हैं। आहाहा!

स्व-आश्रय। प्रभु आत्मा सत् सत् अस्ति, सत्रूप से अस्ति और अपरिमित स्वभावरूप से अस्ति, ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय लेने पर जो दशा होती है, उसे धर्मध्यान कहा जाता है। यह पहले धर्मध्यान शुरुआत में उपादेय है। पूर्ण शुक्लध्यान न हो, तब तक उपादेय है।

और चौथा सर्वदा उपादेय है। पूर्ण आत्मा आनन्द में पूर्ण रीति से स्व-आश्रय में

एकदम लीन हो जाना, वह तो सर्वदा उपादेय है। यह धर्मध्यान के भेद हैं। आहाहा! परिभ्रमण करते हुए अनन्त काल हुआ, कभी इसने सच्ची समझ, सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करना, इसका समझ भी नहीं की। आहाहा! दूसरी सब बातें कीं। मूल चीज़ कैसे प्राप्त हो, उसका इसने प्रयत्न / प्रयास नहीं किया। प्रथम में प्रथम प्रयत्न और प्रयास को धर्मध्यान कहते हैं। उत्कृष्ट प्रयत्न और प्रयास को शुक्लध्यान कहते हैं। वह शुक्लध्यान सर्वदा उपादेय / आदरणीय है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:— श्लोक, ऊपर का।

निष्क्रियं करणातीतं ध्यान-ध्येय-विवर्जितम्।
अन्तर्मुखं तु यद्ध्यानं तच्छुक्लं योगिनो विदुः।।

[श्लोकार्थ :] जो ध्यान निष्क्रिय है,... कठिन पड़े, भाई! जिस ध्यान में राग की क्रिया का अंश भी नहीं है। राग है, वह सक्रिय है। उस राग की सक्रिय अपेक्षा से ध्यान है, वह निष्क्रिय है। द्रव्य की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह सक्रिय है। द्रव्य की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह राग की अपेक्षा से निष्क्रिय, वह द्रव्य की अपेक्षा से सक्रिय है। क्या कहा है? निष्क्रिय कहा वह तो राग की अपेक्षा से। बाकी ध्यान है, वह तो परिणति है। परिणति है वह सक्रिय है। त्रिकाली द्रव्य, वह निष्क्रिय है। आहाहा!

निष्क्रिय ध्यान **इन्द्रियातीत है,...** इन्द्रियों से अतीत अनीन्द्रिय। भगवान अनीन्द्रिय स्वरूप है। आहाहा! ऐसा कठिन लगा न? यह प्रतिक्रमण की व्याख्या सब कठिन आयी न! नैरोबीवाले भाई को ऐसा हुआ न कि सरल कहना सरल। गुजराती चलेगी, परन्तु यह कठिन पड़ेगा। पहला-पहला है। आहाहा! क्या बनता है? कैसे करे? जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। उसमें किसी की की हुई होगी... आहाहा! की होवे परन्तु उस प्रकार से पर्याय होने के काल में होती है, उसे की होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ध्यान, शुक्लध्यान, उत्कृष्ट ध्यान। **निष्क्रिय है,...** जिसमें राग का अंश भी नहीं। **इन्द्रियातीत है,...** अनीन्द्रियमय ध्यान है। इन्द्रिय से अतीत भिन्न है। आहाहा! **ध्यानध्येयविवर्जित...** है। यह ध्यान करनेयोग्य द्रव्य है और मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा ध्यान और ध्येय का विकल्प-राग से रहित है। वहाँ ध्यान और ध्येय का विकल्प भी नहीं है। आहाहा! पंचम काल के मुनि जगत के लिए प्रसिद्ध करते हैं। उन्हें खबर नहीं (कि) यह

पंचम काल है ? हल्का काल है। काल हल्का है तो यह आत्मा कहाँ हल्का है ? आहाहा! आत्मा तो प्रभु है न, बापू! तेरी मान्यता में कमी है। मान्यता में यह बात किसी प्रकार जँचती नहीं। यह प्रभु है, भगवान है, परमेश्वर पूर्ण स्वरूप है। उसका जो ध्यान, वह ध्यान और ध्येय... ध्येय, वह आत्मा और ध्यान, वह पर्याय - ऐसे ध्यान-ध्येय के विकल्प से अतीत है। ऐसे ध्यान-ध्येय का भी वहाँ विकल्प नहीं है। ऐसा शुक्लध्यान। इसे सुनकर निर्णय तो करना पड़ेगा न ? शुक्लध्यान किसे कहना ? परमध्यान किसे कहना ? आहाहा!

(अर्थात् ध्यान और ध्येय के विकल्पों रहित) है और अन्तर्मुख है,... वह ध्यान तो अन्तर्मुख है। अन्तर्मुख अर्थात् अन्तर्मुहूर्त ऐसा नहीं। अन्तर्मुहूर्त अलग और अन्तर्मुख अलग है। अन्तर्मुहूर्त, वह काल बताता है। यहाँ अन्तर्मुख, वह त्रिकाली स्वभाव सन्मुखता बताता है। आहाहा! ऐसा उपदेश है। भगवान पूर्ण स्वरूप परमेश्वर भगवत्स्वरूप, उसके अन्तर्मुख, उसके सन्मुख। आहाहा! **उस ध्यान को योगी शुक्लध्यान कहते हैं।** उस ध्यान को सन्त शुक्लध्यान कहते हैं। उस शुक्लध्यान द्वारा केवल (ज्ञान) होता है। किसी क्रियाकाण्ड से और व्यवहार से केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं - ऐसा बतलाना है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपने लिए बनाया है न ? उसमें से यह कहा। मैं भी जब पूर्ण ध्यान और ध्येय के विकल्परहित पूर्ण द्रव्य का आश्रय अन्तर्मुख लेकर होऊँगा, तब केवलज्ञान होगा। इसके बिना होगा नहीं। भले अभी यह है नहीं परन्तु ऐसा करूँगा, तब केवलज्ञान होगा, ऐसा अभी से स्वीकार करते हैं। आहाहा! भले पंचम काल में इस प्रकार से शुक्लध्यान का अभाव है परन्तु इस भगवान आत्मा में शुक्लध्यान होने की योग्यता है। वह शुक्लध्यान करेगा, तब केवलज्ञान प्राप्त होगा। ऐसी पुकार करते हुए देह छोड़कर स्वर्ग में चले गये हैं। ऐसे अन्दर में भावना करते-करते देह छूटकर स्वर्ग में चले गये हैं। आहाहा!

श्लोक-११९

[अब, इस ८९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]

(वसंततिलका)

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति,
व्यक्तं सदा-शिवमये परमात्म-तत्त्वे।
सास्तीत्युवाच सततं व्यवहार-मार्ग-
स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम् ।।११९।।

(हरिगीतिका)

प्रत्यक्ष शिवमय सदा जो उस आत्मा में है नहीं।
ध्यानावली किञ्चित् अहो यह शुद्धनय कहता यही॥
'ध्यानावली है आत्मा में' वचन यह व्यवहार का।
यह तत्त्व जो जिनवर कथित है इन्द्रजाल अहो महा॥११९॥

[श्लोकार्थ :] प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्व में *ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। 'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)' ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है। हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है॥११९॥

श्लोक-११९ पर प्रवचन

[अब, इस ८९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:] ११९वाँ श्लोक।

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति,
व्यक्तं सदा-शिवमये परमात्म-तत्त्वे।

*ध्यानावली=ध्यानपंक्ति; ध्यान परम्परा।

सास्तीत्युवाच सततं व्यवहार-मार्ग-
स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम् ।।११९।।

आहाहा! हे नाथ! तेरी नय की व्याख्यान इन्द्रजाल जैसी है। एक ओर इन्द्रजाल जैसा विस्तार करे और वापस एक ओर समेट ले। एक ओर नय के विस्तार की व्याख्या करे, एक ओर समेटकर अन्दर में चला जा। आहाहा!

[श्लोकार्थ :] प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय)... भगवान आत्मा सदा शिवमय है, सदा कल्याणमय है, ऐसा पहले इसे अनुभव में बैठना चाहिए। यह आत्मा **प्रगटरूप से...** शक्ति है, वह शक्ति भी प्रगट है। **प्रगटरूप से सदाशिवमय...** आहाहा! व्यक्त है, उस पर्याय की अपेक्षा से भले इसे अव्यक्त कहा; द्रव्य की अपेक्षा से तो द्रव्य व्यक्त है। **सदाशिवमय...** सदा कल्याणमय भगवान है। आहाहा! जिसमें अकल्याण का अंश नहीं, जिसमें संसार की गन्ध नहीं। अतीन्द्रिय पूर्णानन्द की जहाँ गन्ध है, ऐसा स्वभाव शिवमय भगवान आत्मा है। आहाहा! आत्मा को छोड़कर सब बातें... धर्म करो.. धर्म करो.. परन्तु धर्म करे कौन? और करनेवाला कौन? करनेवाला कौन और करता है, वह कितना? धर्म करे। धर्म तो पर्याय है परन्तु धर्म करनेवाला है कितना? आहाहा! वर को छोड़कर बारात जोड़ दी है। आहाहा!

भगवान आत्मा... यह अतिश्योक्ति नहीं, हों! विशेष-विशेष महिमा करके यह बात नहीं है, वस्तुस्वरूप ऐसा है। सदाशिवमय... आहाहा! सदाशिवमय नहीं हो तो कल्याण में सदाशिवमय होगा कहाँ से? लोगस्स में नहीं आता? शिवमय... श्वेताम्बर में आता है। णमोत्थुणं... शिवमय... अपने में दिगम्बर में भी णमोत्थुणं आता है। सामायिक में आता है। सामायिक में दिगम्बर में यह णमोत्थुणं लोगस्स आता है। पाठ है, शास्त्र है। सब पढ़े हैं। यहाँ पर है। णमोत्थुणं भी है। दिगम्बर में परिचय नहीं। श्वेताम्बर में तो पहले से सामायिक सीखे, तब सीखते हैं।

शिवमय अचल। शिवमय है प्रभु। आहाहा! कल्याणस्वरूप। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप है। शिव अर्थात् वे शिव-शंकर नहीं। यह तो भगवान स्वयं शिवस्वरूप ही है। आहाहा! यह बात विश्वास में लेने के बाद इसे समकित होता है। आहाहा!

भगवान आत्मा **सदाशिवमय...** सदाशिवमय, त्रिकाल शिवमय। कभी अकल्याण

और अन्दर अल्पकल्याणमय वह स्वरूप नहीं है। सदाकल्याणमूर्ति प्रभु है। आहा! ऐसी बात आत्मा है यहाँ तो। आत्मा के बिना सब वररहित बारात (जोड़ी है)। (उसे) बारात नहीं कहा जाता। लोगों का झुण्ड कहा जाता है। मुख्य आत्मा नहीं मिले, फिर यह व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार। उस व्यवहार का कहाँ? आहाहा!

प्रगटरूप से सदाशिवमय... है? आहाहा! है न? ११९ है न? **व्यक्तं सदा-शिवमये...** दूसरा पद है। **व्यक्तं सदा-शिवमये..** आहाहा! व्यक्त अर्थात् प्रगट। (समयसार) ४९ गाथा में ऐसा कहें कि व्यक्त की अपेक्षा से द्रव्य अव्यक्त है। आता है न? भाई! पर्याय को व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान मिश्रित होने पर भी, व्यक्त को वह स्पर्श नहीं करता। यह क्या कहा? ४९ गाथा में है। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। दोनों का ज्ञान एक साथ होने पर भी, वह द्रव्य व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें कहाँ हैं? मूल बात रह गयी। ऊपर से छिलके कूटने लगे।

मुमुक्षु : मूल बात कौन सी?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल बात यह। **सदाशिवमय...** त्रिकाल शिवमय, त्रिकाल कल्याणमय। कल्याण पर्याय में करना, वह अलग वस्तु है। यह तो वस्तु सदा कल्याणमय है। शिव। आहाहा! **प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय)...** सदा अर्थात्। ऐसा जो भगवान, **ऐसे परमात्मतत्त्व में...** ऐसे परमात्मतत्त्व को। सदाशिवमय, ऐसा परमात्म तत्त्व। देह से भिन्न भगवान, राग से भी भिन्न भगवान, सदा कल्याणमय-ऐसा परमात्मतत्त्व। आहाहा! बाल-गोपाल आदि सब। शरीर चाहे जो हो। स्त्री का शरीर हो या पुरुष का शरीर हो, तिर्यंच का शरीर हाथी, घोड़ा, चींटी, कौआ का शरीर हो; भगवान अन्दर तो सदा शिवमय है। आहाहा!

वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? अस्ति है या नहीं? अस्ति है तो वह शाश्वत् है या नहीं? शाश्वत् है तो वह पर की अपेक्षा बिना है या नहीं? पर की अपेक्षा बिना है तो सदाशिवमय है। आहाहा! ऐसा उपदेश कहीं सुना था? वीरचन्दभाई! लाठी में (संवत्) १९८५ के वर्ष में सब प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे। ....यह किया, यह किया, यह छोड़ा, यह छोड़ा। आहाहा!

प्रभु! तू पहली एक बात निश्चित कर। दूसरी सब बातें बाद में। छहढाला में आता है 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ।' आहाहा! 'छोड़ि द्वन्द्व-फन्द...' द्वैत भी छोड़कर। द्वन्द्व भेद द्वन्द्व पद छोड़कर निज आतम उर ध्याओ। निज उत्तम आत्मभगवान, आहाहा! वह सदाशिवमय निज परमात्मा ही है। स्वयं निज परमात्मस्वरूप है। आहाहा! एक पैसा खो जाए तो ढूँढ़ने के लिए रात्रि में कितना लगता है। दीपक जलावे, वह कहाँ गया? कहाँ गया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपया नहीं, दो रुपये कहो। गिन्नी गयी हो, लो न गिन्नी। आहाहा! धूल के लिए खोजने के लिए दीपक और लोगों को दौड़ावे। मेरी नजर पहुँचती नहीं, तुम देखो कहाँ है। गिन्नी पड़ी है। यह पड़ा रहा बड़ा सदाशिवमय कल्याणमय (पदार्थ है)। आहाहा! उसे खोजने के लिए निवृत्त हो न! वहाँ दीपक का प्रकाश, चैतन्य का प्रकाश वहाँ रख। पर्याय में चैतन्य का प्रकाश वहाँ रख। आहाहा!

ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! मुनियों की दशा तो देखो! ऐसा जो सदा कल्याणमय, परमात्ममय तत्त्व, उसका यह धर्मध्यान कर न, शुक्लध्यान कर न, यह कर। ऐसी पर्याय के भेदों की उपाधि नहीं कहते, कहते हैं। ऐसा है परन्तु पढ़ा नहीं था कभी। यह पढ़ा था? आहाहा! श्वेताम्बर के शास्त्र दुकान पर पढ़ते थे। उसमें थे न (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन। परन्तु यह कहाँ है? बापू! यह तो अकेले हीरे के झरने हैं। अरे! ऐसा एक-एक पद, एक-एक लाईन कहाँ है? भाई! दूसरे को पक्ष लगे। पक्ष नहीं, प्रभु! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि **सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्व में...** उसमें यह ध्यान, धर्म और यह शुक्लध्यान और इन भिन्न-भिन्न ध्यान की पर्यायें, पूर्ण स्वरूप में भगवान नहीं कहते। आहाहा! ...बहुत सूक्ष्म। नैरोबी में तो आना पड़ेगा। वहाँ के योग्य वहाँ आयेगा, यहाँ के योग्य यहाँ आता है। आहाहा! अरे रे! प्रभु तो अनन्त अमृत का समुद्र है। आहाहा! क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश है। यहाँ प्रदेश का काम नहीं। उसमें भरा हुआ अमृत स्वभाव है। अमृत, अतीन्द्रिय अमृत। शिव अर्थात् उपद्रवरहित अमृत। अमृत का सागर ऐसा परमात्मतत्त्व, उसमें तीन लोक के नाथ... आहाहा! **ध्यानावली**

होना भी शुद्धनय नहीं कहता। अत्यन्त शुद्धनय है, वह तो त्रिकाली परमात्म तत्त्व है, ऐसा कहता है। त्रिकाली परमात्मतत्त्व है, ऐसा शुद्धनय कहता है।

ध्यानपंक्ति; ध्यान परम्परा। ध्यान की परम्परा, वह भी पर्याय है। त्रिकाली जो ज्ञायकस्वभाव अमृत का सागर पूर्ण प्रभु अकेला अमृत का सागर ध्रुव वज्र का बिम्ब पड़ा है, अमृत का सागर, उसमें शुद्धनय जो है, परम शुद्धनय, वह इसका धर्मध्यान और यह शुक्लध्यान और यह ध्यान की पर्याय की बातें शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! वीतराग का मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

प्रभु! तीन लोक के नाथ वहाँ कहते होंगे व्याख्यान में प्रभु। महाविदेह में करोड़ों वर्ष, करोड़ों वर्ष रहनेवाले हैं। सभा में दिव्यध्वनि कैसी होगी! आहाहा! ऐसे मुनियों की यह श्रेणी, छद्मस्थ की... आहाहा! भगवान! तू दूसरा भूल जा, कहते हैं। दूसरा तो भूल जा, परन्तु शुद्धनय त्रिकाली द्रव्य के अतिरिक्त ध्यान करना और ध्यान की धारा बढ़ना, ऐसी पर्याय की बात शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! पागल लगे ऐसा है। यह क्या कहते हैं? आहाहा!

यह सब भगवान है। आबाल-गोपाल, वह परमतत्त्व सदा कल्याणमय है। उसमें शुद्धनय अकेला परम शुद्धनय, वह तो यह ध्रुव परमात्मतत्त्व है कल्याणमय, इसे कहता है। इसका ध्यान कर और इसका ऐसा कर, यह शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! धन्धा-पानी दमदार चलता हो... देखो! पागल देखो! आहाहा! यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. यह लाओ.. यह लो.. यह करो.. यह यहाँ फिरा दो। कठिन बात है। आहाहा! दमदार धन्धा चलता हो। धन्धे में रचपच जाता है। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु वहाँ तक कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष पहले पंचम काल के साधु (ऐसा कहते हैं)। ओहोहो! प्रभु! परन्तु तुम्हें नहीं शुक्लध्यान, नहीं शुक्लध्यान का फल, यह सब कहते हैं, ध्यान और ध्यानावली की बात ही हमारे में नहीं है। हम तो सदाशिवमय हैं। सुन। आहाहा! छोटाभाई! भगवान... आहाहा! ऐसी वाणी कहाँ? एक बार तो शान्त कर दे। जानपना कम-ज्यादा हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। सभा को रंजन करना न भी आवे, उसके साथ क्या है? इसे रंजन करना आवे। परन्तु यह कहते हैं रंजन करना आवे, वह पर्याय भी शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! यह क्या कहा? भगवान

आत्मा का रंजन अर्थात् निर्मल ध्यान, यह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव बढ़ता हुआ, शुद्धता बढ़ती हुई, बढ़ती हुई शुद्धता, बढ़ता-बढ़ता शुक्लध्यान, केवलज्ञान (होवे) ऐसी धारा को शुद्धनय नहीं कहता। आहाहा! रमणीकभाई! समझ में आता है यह? ऐसा है, बापू! आहाहा!

प्रभु! तेरी प्रभुता में ध्यान की पर्याय को भी, कहते हैं इन्द्रजाल है। आहाहा! तेरी प्रभुता, पूर्ण परमेश्वरता, पूर्ण कल्याणमय नाथ में ध्यानावली (अर्थात्) ध्यान की धारा, स्वरूप के ध्यान की धारा, वह तो पर्याय है। भले धर्मध्यान हो, धर्मध्यान बढ़ता हो, शुक्लध्यान हो, वह तो पर्याय है। वह धर्मध्यानावली होना भी (शुद्धनय नहीं कहता)। आहाहा!

प्रभु! तुझमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं; कर्म संयोगी तो नहीं; विकार तो नहीं; तेरे द्रव्य में तेरी विकारी पर्याय तो नहीं, परन्तु द्रव्य में निर्विकारी धर्मध्यान की धारा, शुद्धता जो बढ़ती जाए। शुद्धध्यानावली... आहाहा! उसका **होना भी...** दूसरे की तो क्या बात करना? कहते हैं। 'भी' शब्द प्रयोग किया है न? दूसरे की तो क्या बात करना कि उसमें राग है, पुण्य है, कर्म है, शरीर है-उसकी तो क्या बात करना? बापू! वह तो है ही नहीं। है, परन्तु उसमें है; तुझमें नहीं। आहाहा! जिसका अस्तित्व है, वह उसमें है और ध्यान का अस्तित्व तो पर्याय में है। आहाहा! उस ध्यान की धारा की अवस्था, शुद्धनय त्रिकाल कल्याणमय परमात्मा में वह नहीं है। वह पर्याय शुद्ध त्रिकाली स्वभाव में नहीं है। आहाहा! कठिन लगे, भाई! यह पंचम काल के साधु हैं। दिगम्बर तो मुनि हैं। वे तो श्रोता को कहते हैं। लज्जा नहीं आती? कि क्या सभा कैसी है और उसे तुम ऐसी बड़ी बात करते हो। समाज को देखकर बात करो। यह सुन... सुन... तू। हम तो आत्मा को देखकर बात करते हैं। आहाहा! गजब बात है।

प्रगटरूप से सदाशिवमय... वस्तु जो है आत्मा, वह **प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय)...** निरन्तर आनन्दमय, निरन्तर पूर्णमय... आहाहा! निरन्तर प्रभुमय, निरन्तर ईश्वरमय, निरन्तर अखण्ड वीर्यमय, अखण्ड वीर्य पूर्ण पुरुषार्थ वीर्यमय अखण्ड है। आहाहा! **ऐसे परमात्मतत्त्व में...** ऐसा कहा न? **प्रगटरूप से सदाशिवमय (-निरन्तर कल्याणमय) ऐसे परमात्मतत्त्व में...** ऐसा परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा (उसमें)

आहाहा! थोड़ा कठिन लगे परन्तु प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। तेरी महिमा की पर्याय की बात करते हुए कहते हैं हमें लज्जा आती है। आहाहा! हम दूसरी बात तो क्या करें? परन्तु तू अखण्डानन्द सदा निरन्तर आनन्दमय कल्याणमय ध्रुव आनन्द है, उसे ध्यान करने की पर्याय कहते हुए भी लज्जा आती है। आहाहा! है?

वह **ध्यानावली होना भी...** 'भी' क्यों कहा? कि दूसरा तो क्या कहना? उसमें फिर दया, दान और व्रत के परिणाम हैं, अमुक है, भक्ति के (परिणाम हैं), उनकी तो बात क्या करना? प्रभु! परन्तु **ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता।** आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु सदा कल्याण की मूर्ति, त्रिकाल कल्याणस्वरूप में कल्याण का ध्यान करना, ऐसी जो पर्याय, वह भी शुद्धनय नहीं कहता। शुद्धनय तो सदा परमात्मा कल्याणमय है, ऐसा कहता है। आहाहा! भाग्य है न, बापू! ऐसी बात भाग्यशाली बिना कान में नहीं पड़ती। आहाहा!

भगवान की वाणी है, यह सन्तों की वाणी है। दिगम्बर सन्त एकाध भव में मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव, उसमें एक शैली मस्तिष्क में आयी, भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले लगते हैं। पढ़ते हुए ऐसा मस्तिष्क में आया था। आहाहा! मुनि हैं। ऐसी शैली उसमें थी। आहाहा! जिन्हें समाज की पड़ी नहीं है। जिन्हें समाज का समुदाय मानेगा या नहीं मानेगा? भाग पड़ेंगे या नहीं पड़ जाएँगे, उन्हें कुछ पड़ी नहीं है। उन्हें एक ही कल्याणमय परमात्मा का झुकाव (वर्तता है) परन्तु वह झुकाव भी कहते हैं कि शुद्धनय तो नहीं कहता, बापू! आहाहा! शुद्धनय पर्याय को स्वीकार नहीं करता। देवीलालजी! ऐसा कहाँ सुनने को मिले? स्थानकवासी में है? मन्दिरमार्गी में है? कहीं नहीं है, बापू! दिगम्बर में है परन्तु उन्हें कहाँ खबर पड़ती है? उनमें बहुत सब पड़ा है परन्तु अभी कुछ करते हैं। आहाहा! पुण्य से त्याग होता है, ऐसे लेख आते हैं। आज करुणादीप में आया है। त्याग है। त्याग विशेष करता है, वह पुण्य के कारण त्याग करता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धनय परमसत्ता कल्याण की मूर्ति प्रभु ध्रुव के ध्यान की बात शुद्धनय नहीं कहता। देवीलालजी! भगवान! आहाहा! तेरे पूर्ण प्रभु की बात तो देख! आहाहा! इसमें झगड़ा क्या? वाद-विवाद क्या? भाई! भले न जँचे और इसे जँचानेवाले थोड़े हों। वस्तु सब है। वस्तु (अपेक्षा से) सब भगवान हैं, सदा कल्याणमय परमात्मा हैं, परन्तु जँचने की बात, बापू! बहुत थोड़ों को होती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ध्यानावली होना भी...** दूसरी बात तो क्या करना? **शुद्धनय नहीं कहता। 'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)'...** आहाहा! यह शुक्लध्यान और धर्मध्यान, निश्चय निर्मल पर्याय की शुद्धि की वृद्धि। पर्याय में, हों! शुद्धि, शुद्धि की वृद्धि... शुद्धि की वृद्धि... शुद्धि की वृद्धि... आहाहा! यह ध्यानावली **ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है।** गजब बात है, बापू! आहाहा! यह तो शुद्धता के पर्यायभेद व्यवहारमार्ग में कहे हैं। यशपालजी! आहाहा! प्रभु! इसमें किसका विवाद लेना? बापू! आहाहा!

सत्ता का स्वीकार करनेवाली पर्याय को भी शुद्धनय स्वीकार नहीं करता। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, निरन्तर शिवमय, सदा कल्याणमय परमात्मा, उसे निरन्तर रहनेवाला तत्त्व; उसे निरन्तर नहीं रहनेवाली पर्याय-धर्मध्यान की, शुक्लध्यान की, हों! निरन्तर नहीं रहनेवाली धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय (को भी शुद्धनय स्वीकार नहीं करता) क्योंकि पर्याय, वह व्यवहार है और द्रव्य, वह निश्चय है। आहाहा! पंचाध्यायी में है, पंचाध्यायी में। पर्याय, व्यवहार है; द्रव्य, निश्चय है। यह पर्याय है न यह? ध्यानावली, ध्यान और शुद्धता की पर्याय बढ़े और बढ़े और एक के बाद एक बढ़े, यह तो भेद पड़ा और त्रिकाल की अपेक्षा से वह भेद है। शुद्धनय ध्यानावली को भी नहीं कहता। आहाहा! उसे व्यवहारनय कहता है। अरे! आहाहा! देखो तो सही! दया, दान, व्रत, भक्ति को व्यवहार कहा। वह तो असद्भूतव्यवहार है। यह ध्यानावली सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! यह भी व्यवहारनय कहता है। आहाहा! 'ऐसा मात्र'... वापस भाषा देखी?

'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)' ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में... आहाहा! **कहा है।** त्रिकाली द्रव्य कल्याणमय प्रभु में उसके ध्यान की, आनन्द की धारा बढ़ती जाए और पूर्ण आनन्द का, ज्ञान शुक्लध्यान में हो, यह बात; अरे! पूर्ण आनन्द हो जाए - मोक्षपर्याय, वह भी शुद्धनय नहीं कहता। शुद्ध तो कहता है सदा कल्याणमय त्रिकालमय प्रभु आत्मा है। आहाहा! कठिन पड़े ऐसा है।.... आहाहा! परन्तु इसमें है या नहीं? या घर का कहा जाता है?

मुमुक्षु : एक ओर हाँ तथा दूसरी और न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

हे जिनेन्द्र!... मुनिराज कहते हैं—**हे जिनेन्द्र!...** एक ओर शुद्धनय में ध्यान की पर्याय नहीं कहते और एक ओर ध्यान की पर्याय को व्यवहार कहते हैं, प्रभु! यह तो तुम्हारा इन्द्रजाल नय है। इसमें से पहुँचना जगत को कठिन हो। आहाहा! ऐसे सन्त जगत में सिद्ध समान। नग्न दिगम्बर मुनि जब होंगे तब... आहाहा! धन्य घड़ी! धन्य काल! आहाहा!

मुमुक्षु : भावी तीर्थंकर की बात २१२ कलश में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावी तीर्थंकर का मस्तिष्क में आया था। तीर्थंकर होनेवाले हैं। वाँचन में कहीं आया था। कहीं सब याद रहता है? आहाहा!

शुद्धनय नहीं कहता। व्यवहारमार्ग में कहते हैं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान की पर्याय, वह व्यवहारमार्ग में कहते हैं। वे दया, दान और व्रत व्यवहाररत्नत्रय की तो बात भी नहीं है। यह तो अभी आगे आएगा। अभी आगे कहेंगे। दूसरे पृष्ठ पर आएगा (कलश १२१)। **जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र (-कहनेमात्र) कारण है उसे भी (अर्थात् व्यवहार -रत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है;...** इसके बाद के (कलश में) है, एक पृष्ठ के अन्तर से। बाद के एक पृष्ठ के अन्तर से है। जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र, व्यवहार नाममात्र है। आहाहा! यह तो मोक्ष का कारण है-ध्यानावली तो कारण है। व्यवहार तो कथनमात्र है। आहाहा! कहनेमात्र है। आहाहा!

हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है। अहो! प्रभु! इन्द्रजाल है। एक ओर पर्याय की बातें करना। पर्याय-पर्याय मात्र निर्मल हो, उसकी बात करना; एक ओर द्रव्य एकरूप है, वह बात करना। प्रभु! यह तो इन्द्रजाल जैसा है। पर्याय की बात करने पर विस्तार पाती है और द्रव्य की बात करने पर संक्षिप्तता पाती है। इन्द्रजाल की तरह संक्षिप्तता पा जाती है। आहाहा! इन्द्र की जाल जैसे ऐसे विस्तार पावे और सिमट जाए; वैसे शुद्धनय से संक्षिप्तता पावे, व्यवहारनय से पर्याय की बात करे। आहाहा! **हे जिनेन्द्र! ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है।** आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)